पेरिस
फरवरी ४, २००७

सन्देश संख्या ११४
एक भारतीय लब्ध प्रतिष्ठ अभियंता व
उत्कृष्ट भक्त को पत्र

सत्य सबसे बड़ी शल्य क्रिया है । भाग्यशाली है वह व्यक्ति जिसके शरीर में यह शल्यक्रिया समय–समय पर घटित होती रहती है यद्यपि विभेदकारी चित्तवृत्ति की आत्मसंरक्षी–यन्त्ररचना किसी न किसी बहाने इससे बचना चाहती है ।

कुछ दिनों पूर्व, हम दोनों का शरीर शारीरिक शल्यक्रिया से गुजरा किन्तु बिना किसी चिन्ता या शंका के । धार्मिक चेतना ऊर्जा का संचय करती है ताकि अन्दर में स्थित विचारक और विचार के द्वैत से मुक्त होकर सतत् चलने वाले विचारों से मुक्त हुआ जा सके । इस समता की ऊर्जा में, व्यक्ति किसी विचार का न समर्थक होता है और न ही उसका विरोधी । इस ऊर्जा में ही परम पवित्र, परम उदात्त अनाम अस्तित्व का अवतरण होता है, जो कोई अनुभव नहीं है ।

अनुभव सीमित है और अनुभव से ली गई जानकारी भी सीमित है । इस जानकारी को संचित रखने वाली स्मृति भी सीमित है । इस तरह विचार अत्यन्त सीमित होता है क्योंकि वह स्मृति से उत्पन्न होता है । विचारक विचारों के जाल से उत्पन्न होता है तथा अहंकार और निहित स्वार्थ से प्रदूषित होता है और इसी कारण वह कभी भी पर्याप्त अनुक्रिया कर ही नहीं सकता । यह विचारक केवल प्रतिक्रिया करता है तथा संबंधों में विकृति ला देता है, उन्हें असहज कर देता है । सीमित असीम का स्पर्श पा सके – इसका कोई मार्ग नहीं है । असीम समझदारी के होने के लिए विचार और विचारक को पूर्णतया समाप्त होना होगा किन्तु यह अवस्था विस्मृति की अवस्था नहीं है । सूक्ष्म या स्थूल, सभी प्रकार के प्रयोजन विचारक को प्रदूषित करते रहते हैं और विचारक विभिन्न मुखौटों को धारण कर सतत् बना रहता है, कभी समाप्त नहीं होता । किन्तु चित्तवृत्ति में मौलिक रूपान्तरण हेतु इस विचारक को समाप्त होना ही होगा (तकनीकी दुनिया में नहीं) और यह भी अनुभव का विषय नहीं है ।

समय खतरा है । हमलोग जैसे ही रूपान्तरण घटित होने के लिए समय की ओर देखते हैं, तब वस्तुतः रूपान्तरण न होकर पूर्व की ही स्थिति बनी रहती है । इच्छा अर्थात् ''मैं'' समय के साथ विद्यमान रहता है । तथाकथित धर्माधिकारीगण कहते हैं कि मौलिक रूपान्तरण का माध्यम है–समय । यथार्थतः समयान्तराल में मौलिक रूपान्तरण सम्भव नहीं है । यह केवल विस्फोट की कृपा द्वारा घटित होता है, जो पुनः अनुभव नहीं है । मौलिक रूपान्तरण की गति में समय की गति नहीं होती । यहाँ मौलिक रूपान्तरण का अर्थ चित्तवृत्ति की वैसी अवस्था से है जिसमें एक ''मैं'' दूसरे ''मैं'' में परिवर्तित नहीं होता बल्कि समाप्त हो जाता है ।

परछाई को देखो । तुम इसे बदल नहीं सकते । किन्तु कहीं से भी आने वाला प्रकाश उसे क्षीण कर सकता है और उसे समाप्त भी कर सकता है । किन्तु हमलोग अपने मन यानी कि अपनी परछाई को बदलना चाहते हैं । चैतन्य का जागरण ही मन का समापन है । तुम ''ईश्वर'', ''उच्च आत्मा'', ''ईश्वर–पुत्र'', सन्त, गुरू आदि विचारों के प्रति क्यों समर्पण करते हो? क्या तुम प्रकाश के प्रति समर्पण करते हो ? यह तो विद्यमान है । एक स्वस्थ मस्तिष्क किसी का शरण नहीं लेता । वह बिखरा हुआ नहीं होता । वह निर्बन्ध होता है। उसका कोई कार्यक्रम नहीं होता । वह तुलना नहीं करता । वह कमकाण्डों, विश्वासों तथा सिद्धान्तों से पूर्णतया मुक्त होता है । वह अपनी स्वतंत्रता में पूर्णतया स्वतंत्र होता है । यह प्रेम और करुणा का गुण है जो चैतन्य का स्वभाव है ।

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा
पुरा प्रोक्ता मयानघ
ज्ञानयोगेन सांख्यानां
कर्मयोगेन योगिनाम् ।
(भगवद्गीता ३:३)

स्वाध्याय या सांख्य के लिए स्वस्थ मस्तिष्क चाहिए । क्रिया अभ्यास सभी के लिए उपयुक्त है । अतः सांख्य की समझदारी की अपनी क्षमता के बारे में कोई पूर्वानुमान किए बिना अभ्यास करते रहना श्रेयस्कर है ।

।। प्रकाश की जय ।।